शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

चैत्र : २४८२ ☆ वर्ष ग्यारहवाँ ☆ अंक : १२

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

❀ मेरा जीवन ❀

– आत्मा पराश्रय से जीनेवाला नहीं है, किन्तु अपनी जीवत्वशक्ति से ही त्रिकाल जीवित रहनेवाला है।

– हे जीव! यदि तुझे सच्चा जीवन जीना हो तो जिसमें जीवत्वशक्ति भरी है – ऐसा अपने आत्मा को देख।

– अनन्त सिद्ध भगवन्त शरीर के बिना ही अपने शुद्ध चैतन्यप्राण से परम सुखी जीवन जी रहे हैं।

– जो आत्मा की ऐसी जीवनशक्ति को जानता है, उसे मृत्यु का भय नहीं रहता।

– अरे जीव! अपने जीवन का कारण पर में न ढूँढ़; तेरा जीवन पराश्रित नहीं है, किन्तु अपनी जीवनशक्ति से ही तू जी रहा है।

– जो आत्मा की ऐसी जीवनशक्ति को जानता है, उसके अनन्त चतुष्टयमय मुक्त-जीवन प्रगट होता है।

''जय हो उस जीवन की!''

[—जीवत्वशक्ति के प्रवचन से]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

१३२

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

ग्राहकों से निवेदन

इस अंक के साथ आत्मधर्म का ११ वाँ वर्ष पूर्ण होता है और आप का लवाजम भी पूर्ण होता है; आगामी अंक से नया वर्ष शुरु होगा। अत: नये वर्ष का आपका लवाजम शीघ्र ही मनीओर्डर से भेज के कार्यालय की व्यवस्था में सहयोग दीजियेगा। वैशाख सुद बीज के पहले ही लवाजम भेजने की विनती है। वी.पी. करने से कार्यालय को बहुत तकलीफ रहती है, आपको भी अंक विलम्ब से मिलता है, और खर्च भी ०-८-० ज्यादा लग जाता है। यह सब विचारकर आप अवश्य मनीओरडर से ही लवाजम भेज देंगे, ऐसी आशा है। वैशाख सुद बीज तक अगर आपका लवाजम न आयेगा, तो आपको वी.पी. करें या नहीं—यह सूचित कीजियेगा। लवाजम भेजने का पता— श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री जैनदर्शन-शिक्षण-वर्ग

सोनगढ़ में इस वर्ष भी ग्रीष्म की छुट्टियों के दरमियान सोमवार ता. १४-५-५६ से ता. ४-६-५६ तक जैनदर्शन के अध्ययनार्थ विद्यार्थियों के लिये शिक्षण-वर्ग का प्रारंभ होगा। विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य जिज्ञासे जैन-बंधु भी इस वर्ग का लाभ ले सकेंगे। वर्ग में सम्मिलित होनेवालों के लिये भोजन तथा निवास का प्रबंध श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ की ओर से होगा। वर्ग की समाप्ति होने पर, परीक्षा लेने के पश्चात् प्रमाणपत्र प्रदान किये जायेंगे।

सम्मिलित होनेवाले इच्छुक व्यक्ति को शिक्षणवर्ग में सम्मिलित होने की पूर्वसूचना प्रेषित कर देनी चाहिए और वर्ग में स-समय उपस्थित होना चाहिये।

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म

चैत्र : २४८२ ☆ वर्ष ग्यारहवाँ ☆ अंक : १२

पंच परमेष्ठी भगवंतो को नमस्कार

[श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों से]

[वीर सं. २४८०, श्रावण कृष्णा १२ से श्रावण शुक्ला ३]

यहाँ मोक्षमार्ग प्रकाशक के मंगलाचरण में पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया है। जिन्हें नमस्कार किया है, उनका स्वरूप जानना चाहिये; क्योंकि स्वरूप को जाने बिना यह समझ में नहीं आता कि मैं किसे नमस्कार करता हूँ? इसके बिना उत्तम फल की प्राप्ति भी कहाँ से होगी? इसलिये यहाँ पंच परमेष्ठी का विचार करते हैं।

(१) श्री अरिहंत परमेष्ठी का स्वरूप

–जो गृहस्थपना छोड़कर, मुनिधर्म अंगीकार करके, निजस्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय करके अनन्त चतुष्टयरूप से विराजमान हुए हैं,

–वे अनन्त ज्ञान द्वारा तो अपने–अपने अनन्त गुण–पर्यायों सहित समस्त जीवादि द्रव्यों को युगपत विशेषरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं।

– अनन्त दर्शन द्वारा उनका सामान्यरूप से अवलोकन करते हैं,

– अनन्त वीर्य द्वारा ऐसे उपर्युक्त सामर्थ्य को धारण करते हैं,

– तथा अनन्त सुख द्वारा निराकुल परमानन्द का अनुभव करते हैं।

– और जो सर्वथा राग–द्वेषादि विकार भावों से रहित होकर शांत–रसरूप परिणमित हुए हैं,

– क्षुधा–तृषादि समस्त दोषों से मुक्त होकर देवाधिदेवपने को प्राप्त हुए हैं,

– आयुध, अम्बर (वस्त्र) आदि, तथा अंगविकारादि जो काम, क्रोधादि, निंद्यभावों के चिह्न हैं, उनसे रहित जिनका परम औदारिक शरीर हुआ है,

– जिनके वचनों द्वारा लोक में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन होता है – जिससे अन्य जीवों का कल्याण होता है,

– अन्य लौकिक जीवों को प्रभुत्व मनाने के कारणरूप अनेक अतिशय तथा नाना प्रकार के वैभव का जिनके संयुक्तपना होता है,

– तथा जिनका अपने हित के लिये श्री गणधर–इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवन करते हैं,

– ऐसे सर्व प्रकार से पूजनीय श्री अरिहंतदेव को हमारा नमस्कार हो।

गृहस्थपना छोड़कर... मुनिधर्म अंगीकार करके...

प्रथम तो गृहस्थपना छोड़कर मुनिधर्म अंगीकार किया; इसलिये गृहस्थपने में रहकर किसी को मुनिदशा या केवलज्ञान हो जाये—ऐसा नहीं होता। गृहस्थपने में आत्मा का सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर भी अस्थिरता का राग था, वह राग छूटने से राग का निमित्त छूट गया; इसलिये गृहस्थपना छूट गया और तीन कषायों के अभाव से आत्मा में सम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक वीतरागी चारित्ररूप मुनिदशा प्रगट करके, गृहस्थपने का राग का अशुद्ध उपयोग छोड़कर मुनिदशा के योग्य शुद्धोपयोग प्रगट किया, वहाँ बाह्य में भी परिग्रहरहित दिगम्बरदशा हो गई है।

निजस्वभावसाधन द्वारा...

मुनिदशा में निजस्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय करके, अनन्त चतुष्टय प्रगट किये हैं। मुनिदशा में पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का शुभराग होता है, किन्तु उस राग के साधन द्वारा केवलज्ञान प्राप्त नहीं किया है; अन्तर में निजस्वभावसाधन द्वारा अर्थात् स्वभाव के आश्रय से शुद्धोपयोगरूप साधन द्वारा ही भगवान ने केवलज्ञानादि चतुष्टय प्रगट किये हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुख–ऐसे चतुष्टयों सहित अरिहंत भगवान विराजमान हैं।

केवलज्ञान.....

अरिहंत भगवान अपने अनंतज्ञान द्वारा जीवादि समस्त द्रव्यों को, उनके अनंत गुण–पर्यायों

–सहित एकसाथ प्रत्यक्ष जानते हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने–अपने गुण–पर्यायों सहित है; निगोद का जीव भी उसके अपने गुण–पर्यायों सहित है, किसी दूसरे के कारण उसके गुण–पर्यायें नहीं हैं; कर्म के परमाणु उनके अपने गुण–पर्यायों सहित हैं, उनके गुण–पर्यायें आत्मा में नहीं हैं;—इसप्रकार भगवान समस्त द्रव्यों को उनके अपने गुण–पर्यायों सहित एक साथ जानते हैं; अपने आत्मद्रव्य को भी गुण–पर्यायों सहित प्रत्यक्ष जानते हैं। अरिहंत भगवान को नमस्कार करते हुए उनके ऐसे केवलज्ञान सामर्थ्य को जानना चाहिये।

केवलदर्शन.....

केवलीभगवान, अनंतदर्शन द्वारा समस्त पदार्थों का सामान्यरूप से अवलोकन करते हैं। ऐसे केवलज्ञान और केवलदर्शन भगवान के एक साथ ही वर्तते हैं; एक समय केवलज्ञान और दूसरे समय केवलदर्शन–ऐसा क्रम अरिहंत भगवान के नहीं होता।

अनंतवीर्य.....

अरिहंत भगवान, आत्मा के अनन्त वीर्य द्वारा केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपर्युक्त सामर्थ्य को धारण करते हैं। देखो, यह आत्मा का बल! पर में कुछ करे, ऐसा आत्मा का सामर्थ्य नहीं है, किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करे—ऐसा आत्मा का बल है। भगवान को वह अनंत आत्मबल प्रगट हो गया है।

अनंत आनन्द....

अरिहंत भगवान, अनंत सुख द्वारा आत्मा के निराकुल परमानन्द का अनुभव करते हैं। आत्मस्वभाव का अतीन्द्रिय आनन्द, भगवान के परिपूर्ण विकसित हो गया है।

शांतरस.....

अरिहंत भगवान सर्वथा सर्व राग–द्वेषादि विकारभावों से रहित होकर शांतरसरूप परिणमित हुए हैं। आत्मा के असंख्य चैतन्यप्रदेशों में शांतरस प्रगट हो गया है; भगवान शांतरस में मग्न हैं।

क्षुधादि दोषरहितता.....

और क्षुधा–तृषादि समस्त दोषों से मुक्त होकर भगवान देवाधिदेव को प्राप्त हुए हैं। भगवान को क्षुधा, तृषा, रोगादि नहीं होते; इसलिये आहार–पानी या औषधादि भी नहीं होते। स्वर्ग के देवों को हजारों वर्ष में आहार की इच्छा होती है और अरिहंत भगवान प्रतिदिन आहार करते हैं—ऐसा

माननेवाले ने अरिहंत भगवान को नहीं पहिचाना है; इसलिये उसका ''णमो अरिहंताणं'' भी सच्चा नहीं है। भगवान का आत्मा पूर्ण अतीन्द्रियभावरूप परिणमित हो गया है, वहाँ देह में क्षुधादि की उत्पत्ति होती ही नहीं और न भगवान को आहारादि होते हैं। क्षुधा तो दोष है; भगवान को क्षुधा लगती है – ऐसा माननेवाले ने भगवान को दोषयुक्त माना है।

वस्त्रादि रहित परमौदारिकता....

भगवान के अंतर में तो राग-द्वेषादि भावों का अभाव होकर वीतरागता हो गई है, और बाह्य में भी शस्त्र-वस्त्रादि नहीं होते। वस्त्रादि का धारण करना, वह राग का चिह्न है और शस्त्रादि का धारण करना, वह द्वेष का चिह्न है; भगवान के ऐसे निंद्य भावों के चिह्न नहीं होते। भगवान का शरीर भी परम औदारिक शांतरसरूप हो गया है; मुद्रा परम शांत हो गई है।

धर्मतीर्थ के प्रवर्तक.....

और भगवन की दिव्यध्वनि द्वारा लोक में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन होता है। ऐसा नहीं हो सकता कि भगवान की देशना छूटे और धर्म प्राप्त करनेवाले जीव न हों। भगवान की देशना कभी खाली नहीं जाती। कोई ऐसा कहे कि भगवान महावीर की पहली देशना बेकार हुई,—यह आश्चर्य हुआ! तो ऐसा नहीं हो सकता। जिस प्रकार सिद्धशिला से परमात्मा नीचे गिरे—ऐसी आश्चर्यकर घटना कभी नहीं होती; उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान की देशना खाली जाये—ऐसा भी कभी नहीं होता। अरिहंतभगवान धर्मतीर्थ के प्रवर्तक हैं; और सर्वोत्कृष्ट पुण्यवान होने से भगवान की वाणी झेलकर अनेक जीव अपना कल्याण करते हैं। श्वेताम्बरमत के शास्त्रों में लिखा है कि भगवान महावीर के केवलज्ञान के बाद वाणी खिरी परन्तु वे देशना खाली गई—वे कथन मिथ्या हैं।

लौकिक जीवों को प्रभुत्व मानने के कारणरूप बाह्य वैभव....

जो लोकोत्तर धर्मात्मा हैं, वे जीव तो केवलज्ञानादि गुणों द्वारा अरिहंत भगवान को पहिचानकर पूज्य मानते हैं; और अन्य लौकिक जीवों को प्रभुत्व मानने के कारणरूप अनेक अतिशय तथा समवशरणादि वैभव का संयुक्तपना भगवान के है। भगवान साधारण मनुष्यों की भाँति धरती पर नहीं विचरते, किन्तु उनका शरीर पाँच हजार धनुष ऊपर आकाश में विचरण करता है और आठ भूमिकावाला दैवी समवशरण होता है। उस समवशरण में आने पर अंधों की आँखें खुल जाती हैं और लंगड़े चलने लगते हैं। भगवान की धर्मसभा में चीते और हिरन, सिंह और खरगोश आदि जीव एक साथ बैठते हैं, तथापि उनके बैर-भावना उत्पन्न नहीं होती। समवशरण में

चारों ओर चार मानस्तंभ होते हैं; जिन्हें देखते ही मानियों का मान गल जाता है। इसप्रकार भगवान का समवशरणादि बाह्यवैभव भी अलौकिक होता है। लौकिक जीव उस बाह्य वैभव द्वारा ही भगवान की प्रभुता मानते हैं।

धर्मात्मा तो आत्माश्रित केवलज्ञानादि गुणों द्वारा भगवान की प्रभुता मानते हैं और लौकिकजन देहाश्रित गुणों द्वारा अथवा संयोग के वैभव द्वारा भगवान की महानता मानते हैं।

भगवान की स्तुति करते हुए श्री समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि हे नाथ! हम इस बाह्य वैभव द्वारा आपको पूजनीय नहीं मानते, किन्तु अन्तर में आपकी वीतरागता और सर्वज्ञता को पहिचानकर आपको पूज्य मानते हैं। भगवान के यथार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय को पहिचाने तो आत्मा का भान और सम्यग्दर्शन हो जाये। इसप्रकार भगवान को पहिचानकर नमस्कार करे, तभी सच्चा नमस्कार है।

गणधरादिक उत्तम जीवों द्वारा पूज्यपना.....

और श्री गणधरदेव, इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि उत्तम जीव भी अपने हित के लिये अरिहंत भगवान का सेवन करते हैं। तन-मन और वचन से - सर्वप्रकार से विनयपूर्वक भगवान का सेवन करते हैं। इन्द्रादि जीव सम्यग्दृष्टि हैं, इसलिये उन्हें उत्तम जीव कहा है; ऐसे उत्तम जीव भी अपने हित के लिये आदरपूर्वक अरिहंत भगवान का सेवन करते हैं।

पहिचानपूर्वक नमस्कार.....

—इसप्रकार अरिहंत भगवान सर्वप्रकार से पूजनीय हैं; ऐसे श्री अरिहंतदेव को हमारा नमस्कार हो।-इसप्रकार केवलज्ञानादि गुणों द्वारा अरिहंत भगवान का स्वरूप पहिचानकर उन्हें प्रथम नमस्कार किया।

अब सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप ध्याते हैं।

❀ ❀ ❀

(२) सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

❀ जो गृहस्थदशा को छोड़कर, मुनिधर्मसाधन द्वारा चार घातिकर्मों का नाश होने पर अनंत चतुष्टय स्वभाव प्रगट करके, कुछ काल बीतने पर, चार अघातिकर्मों के भी भस्म होने पर परमौदारिक शरीर को छोड़कर ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में जाकर बिराजमान हुए हैं।

❀ वहाँ जिन्हें सम्पूर्ण परद्रव्यों का सम्बन्ध छूटने से मुक्तदशा की सिद्धि हुई है।

❀ चरम (अंतिम) शरीर से किंचित् न्यून पुरुषाकारवत् जिनके आत्मप्रदेशों का आकार अवस्थित हुआ है।

❀ प्रतिपक्षी कर्मों का नाश होने से समस्त ज्ञानदर्शनादि आत्मिक गुण जिनके सम्पूर्णतया स्वभाव को प्राप्त हुए हैं।

❀ नोकर्मों का सम्बन्ध दूर होने से जिनके समस्त अमूर्तत्त्वादिक आत्मिक धर्म प्रगट हुए हैं।

❀ भावकर्मों का अभाव होने से निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो रहा है।

❀ ऐसे सिद्ध भगवान के ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्वद्रव्य-परद्रव्य का और औपाधिक-स्वाभाविक भावों का विज्ञान होता है; और उसके द्वारा उन्हें सिद्ध समान होने का साधन प्राप्त होता है।

❀ इसलिये साधने योग्य अपना जो शुद्धस्वरूप है, उसे दर्शाने के लिये सिद्ध भगवान प्रतिबिम्ब समान हैं।

❀ सिद्ध भगवान कृतकृत्य हुए हैं, इसलिये उसी प्रकार अनंतकाल पर्यंत रहते हैं।

—ऐसे निष्पन्नता को प्राप्त श्री सिद्ध भगवान को हमारा नमस्कार हो!

❀ ❀ ❀

सिद्धपद की प्राप्ति का क्रम; और अरिहंतदशा का काल

जो सिद्ध हुए हैं, वे भी पहले तो संसार में थे। प्रथम उन्होंने अपने ज्ञानानन्दस्वभाव की पहिचान करके सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान किये; तत्पश्चात् वैराग्य होने पर गृहस्थदशा छोड़कर, तीन कषायचौकड़ी का अभाव करके शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा प्रगट की; और उस शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म के साधन द्वारा चार घातिकर्मों का नाश होने पर केवलज्ञानादि चतुष्टयरूप अरिहंतदशा प्रगट हुई। वह अरिहंतदशा प्रगट होने के पश्चात् कोई जीव तो अन्तर्मुहूर्त में ही सिद्धपद प्राप्त करते हैं और कोई जीव करोड़ों-अरबों वर्ष तक अरिहंतदशा में रहकर फिर सिद्धपद प्राप्त करते हैं। अरिहंतदशा का काल सब जीवों को एक-सा नहीं होता। देखो, सीमंधर भगवान इस समय महाविदेहक्षेत्र में अरिहंतदशा में बिराजमान हैं, उन्होंने करोड़ों वर्ष पहले केवलज्ञान प्रगट करके अरिहंतदशा प्राप्त की है और अभी करोड़ों वर्ष तक अरिहंतपद पर रहकर फिर सिद्ध होंगे। महावीर भगवान इसी भरतक्षेत्र में हुए थे। उन्होंने सीमंधर भगवान के पश्चात् अरिहंतदशा प्राप्त की और उनसे पूर्व सिद्धपद प्राप्त कर लिया और कोई जीव केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त में ही

सिद्धपद प्राप्त कर लेते हैं।—यह अंतर्मुहूर्त का काल तीर्थंकर को लागू नहीं होता; तीर्थंकर भगवान को तो अरिहंतदशा का अमुक विशेषकाल ही होता है।

सिद्धभगवान लोकाग्र में बिराजमान हैं

इसप्रकार अरिहंतदशा में कुछ काल बीतने पर शेष चार अघाति कर्मों का भी नाश होने पर परमौदारिक शरीर को भी छोड़कर, सिद्धभगवान ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में जाकर बिराजमान हो गये हैं। यह लोक नीचे से ऊपर तक चौदह राजू ऊँचा है; उसके मध्य भाग में यह मनुष्यलोक है और यहाँ ऊपर सात राजू तक ऊर्ध्वलोक है। उसके अंत में-लोकाग्र में अनंत सिद्ध भगवन्त बिराजमान हैं। ''सिद्ध भगवन्त सिद्ध शिला पर बिराजमान हैं''—ऐसा कहा जाता है, किन्तु वास्तव में कहीं सिद्धभगवान सिद्ध शिला से सटकर नहीं बैठे हैं; उससे तो वे कई कोस ऊपर लोकाग्रस्थित हैं। सिद्धालय से सिद्ध शिला बहुत नीचे है। भाव से भी सिद्ध भगवान जगत में सब से ऊँचे हैं, और क्षेत्र से भी लोक में सबसे उच्च स्थान पर बिराजमान हैं।

परद्रव्य के सम्बन्ध से रहितपना; और उसे प्रतीत में लेनेवाले की साधकदशा

सिद्धभगवान का समस्त परद्रव्यों से सम्बन्ध छूट गया है; आत्मा के साथ एक परमाणुमात्र का भी सम्बन्ध नहीं रहा और मुक्तदशा की सिद्धि हुई है। - जिनका समस्त परद्रव्यों से सम्बन्ध छूट गया है—ऐसे सिद्धभगवान को जाननेवाला धर्मी, अपने आत्मा को भी समस्त परद्रव्यों से भिन्न जानता है, किन्तु अपनी वर्तमान पर्याय में जितना नैमित्तिक दोष है—अपराध है, उतना अभी निमिततरूप से उसके परद्रव्यों का सम्बन्ध है। सिद्धभगवान को छहों द्रव्य एक क्षेत्र में होने पर भी उन्हें किसी प्रकार का विकार नहीं है, इसलिये समस्त परद्रव्यों के साथ का सम्बन्ध सर्वथा छूट गया है; ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, किन्तु वह कहीं विकार का कारण नहीं है। ऐसे सिद्धभगवान की प्रतीति करनेवाले धर्मी को अपने शुद्धात्मा की दृष्टि में परद्रव्यों के सम्बन्ध का अभाव वर्तता है।—इसप्रकार अकेले सिद्धभगवान की बात नहीं है; किन्तु सिद्धभगवान को यथार्थरूप से स्वीकार करनेवाला जीव स्वयं भी अंशत: उस जाति में मिलकर साधक होता है-ऐसी यह बात है।

सिद्धभगवान का आकार

अब कहते हैं कि उन सिद्धभगवान का आकार कैसा है ? अन्तिम शरीर का जो आकार था, उससे किंचित् न्यून ऐसे पुरुषाकारवत् उनके आत्मप्रदेशों का आकार अवस्थित हुआ है।

अन्तिम शरीर से किंचित् न्यून

सिद्धदशा में आत्मा के असंख्य प्रदेशों का आकार अन्तिम शरीर से ''किंचित् न्यून'' अर्थात् कुछ छोटा होता है। शरीर के नख-केश आदि भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं होते, उस अपेक्षा से सिद्ध का आकार अन्तिम शरीर के आकार से किंचित् नयून जानना; किन्तु कोई ऐसा कहते हैं कि अन्तिम शरीर से तीसरे भाग का आकार कम हो जाता है, वह सत्य नहीं है; और कोई ऐसा मानते हैं कि मुक्तदशा होने पर आत्मा सारे लोक में व्याप्त हो जाता है—यह भी सत्य नहीं है।

पुरुषाकारवत्

पुनश्च, सिद्धभगवान का आकार ''पुरुषाकारवत्'' होता है। यहाँ ''पुरुषाकारवत्'' कहा, उसमें यह बात भी आ जाती है कि पुरुष ही सिद्धदशा को प्राप्त होता है; स्त्रीपर्याय में सिद्धदशा नहीं होती। सिद्ध होनेवाले जीव का अन्तिम शरीर पुरुष का ही होता है - ऐसा नियम है। स्त्रीपर्याय में विद्यमान आत्मा को उत्कृष्ट में उत्कृष्ट पाँचवें गुणस्थान तक की पवित्र दशा होती है; पाँचवें गुणस्थान से उच्चदशा उसके नहीं होती; फिर केवलज्ञान या सिद्धपद तो होगा ही कहाँ से? बृहद्द्रव्यसंग्रह शास्त्र गा. ५१ में सिद्ध परमात्मा को 'पुरिसायारो' पुरुषाकार कहा है।

प्रदेशत्वगुण के कारण आकार

अन्तिम शरीर से किंचित् छोटा और पुरुषाकारवत्—ऐसा आकार सिद्धभगवान के अवस्थित हुआ है। सिद्धभगवान के जड़ का आकार नहीं है और इन्द्रियज्ञान से दिखलाई दे, वैसा आकार भी नहीं है,—उन्हें निराकार कहते हैं; किन्तु उनके अपने आत्मा के असंख्य प्रदेशों का आकार तो है। आकाररहित कोई वस्तु नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में ''प्रदेशत्व'' गुण है; इसलिये उसके अपना-अपना कोई न कोई आकार अवश्य होता है। अरूपी वस्तु का आकार अरूपी होता है और रूपी वस्तु का आकार रूपी। सिद्धभगवान के भी अपने प्रदेशत्वगुण के कारण उपरोक्तानुसार अरूपी आकार होता है। जिसे स्वभावव्यंजनपर्याय कहते हैं।

सिद्धों के आकार में विशेषता

सिद्धभगवान के आत्मा के असंख्य प्रदेशों का जो आकार है, वह सदैव अवस्थित रहता है; अब सादि-अनन्तकाल तक सदैव ज्यों का त्यों आकार रहेगा; संसारियों की भाँति उनके संकोच-विस्तार नहीं होता, किन्तु एकरूप आकार रहता है।

प्रत्येक सिद्धभगवान के अपना-अपना भिन्न-भिन्न आकार होता है। अनन्त सिद्ध भगवन्त

एक क्षेत्र में रहते हैं, किन्तु ''ज्योति में ज्योति'' की भाँति कोई एक-दूसरे में एकमेक नहीं हो जाते; सब अपने-अपने भिन्न आकार में रहते हैं। सभी सिद्धभगवन्तों को आनन्द का अनुभव एक-सा है, ज्ञानसामर्थ्य भी एक-सा है, किन्तु ऐसा कोई नियम नहीं है कि सब का आकार भी एक-सा हो। किसी के लगभग सवा पाँच सौ धनुष का आकार होता है और किसी के एक धनुष का;—इसप्रकार में लघुता-दीर्घता होती है, किन्तु आत्मा के असंख्य प्रदेश तो सबके समान हैं; ज्ञान-आनन्दादि भी समान हैं।

सर्वगुणसम्पन्नता....

चार घातिकर्मों का नाश होकर केवलज्ञानादि चतुष्टय तो सिद्ध भगवान को अरिहंतदशा में ही प्रगट हो गये थे; किन्तु वहाँ अभी चार अघातिकर्मों के निमित्त से कुछ गुण विकसित नहीं हुए थे; अब उन शेष चार अघातिकर्मों का भी क्षय होने से और नोकर्मरूप शरीरादि का सम्बन्ध भी छूट जाने से सिद्धदशा में अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व, अव्याबाधत्व आदि सर्व गुण स्वभावरूप में प्रगट हो गये हैं; और भावकर्मों का भी अभाव होने से सिद्धभगवान को अनाकुल आनंदमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो रहा है। भगवान सादि-अनन्तकाल तक अपने आत्मस्वभाव में से उत्पन्न ऐसे अतीन्द्रियआनन्द के अनुभव से सदैव अत्यन्तरूप से तृप्त वर्तते हैं।

आत्मा का स्वरूप पहिचानने के लिये प्रतिबिम्ब समान

—ऐसे सिद्धभगवान का स्वरूप जानकर उनके ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्व-पर का और स्वभाव-विभाव का भेदविज्ञान होता है। इस आत्मा का परमार्थ स्वरूप भी सिद्ध भगवान जैसा, पर से और विभाव से भिन्न है—ऐसी पहिचान द्वारा स्वयं सिद्धसमान होने का साधन प्राप्त होता है। इसप्रकार, साधने योग्य ऐसा जो अपना शुद्धस्वरूप है, उसे दर्शाने के लिये सिद्धभगवान प्रतिबिम्ब -समान हैं। जिसप्रकार स्वच्छ दर्पण में देखने से अपना मुँह दिखाई देता है; उसी प्रकार सिद्ध भगवान को देखने से अपने आत्मा का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होता है। स्वच्छ दर्पण में प्रतिबिम्ब देखने से मालूम होता है कि मेरा रूप ऐसा है; उसी प्रकार इस आत्मा का शुद्धस्वरूप देखने के लिये सिद्ध भगवान स्वच्छ दर्पण के समान हैं; उन्हें पहिचानने से अपना स्वरूप ज्ञात होता है।

सिद्धभगवान को जैसे परिपूर्ण ज्ञान-आनन्दादि प्रगट हो गये हैं, वैसे ही परिपूर्ण ज्ञान-आनन्दादि प्रगट होने का सामर्थ्य मेरे स्वभाव में भी है।

सिद्धभगवान के सर्व विभावों का नाश हो गया है, तो मेरे आत्मा में से भी सर्व विभाव नाश

होने योग्य हैं; विभाव मेरा स्वभाव नहीं है।

सिद्ध भगवान को सर्व परद्रव्यों का सम्बन्ध छूट गया है, उसी प्रकार मेरा आत्मा भी सर्व परद्रव्यों से अत्यन्त पृथक् है।

—इसप्रकार सिद्ध भगवान को पहिचानने से अपने परिपूर्ण स्वभावसामर्थ्य का भान होता है और विभाव तथा परद्रव्यों से भिन्नता ज्ञात होती है।

सिद्ध समान सदा पद मेरो

''सिद्ध समान सदा पद मेरो''—अर्थात् सिद्ध भगवान के आत्मा में जो ज्ञानादि प्रगट हुए हैं, वे सब मेरे स्वभाव में हैं; और सिद्ध भगवान के आत्मा में से जो भी (रागादि) निकल गया है, वह सब मेरे स्वभाव से भिन्न है।—इसप्रकार सिद्ध भगवान को ध्येय बनाकर, अपने आत्मा को भी उस स्वरूप से लक्ष में लेकर ध्याने से भव्य जीव सम्यक्-दर्शनादि को प्राप्त हो जाते हैं।

सिद्ध भगवान को अपने आत्मा की शक्ति में से केवलज्ञानादि परिपूर्ण सामर्थ्य प्रगट हो गया है; तथापि शक्ति में भी परिपूर्ण ही हैं; इस आत्मा के वैसा परिपूर्ण सामर्थ्य प्रगट नहीं हुआ है, किन्तु शक्ति में तो उसके भी परिपूर्ण सामर्थ्य है; इसलिये शक्तिरूप से सिद्ध भगवान और यह आत्मा समान हैं। सिद्ध भगवान को वह परिपूर्ण शक्ति व्यक्त हो गई है; धर्मात्मा को उस परिपूर्ण शक्ति की प्रतीति प्रगट हुई है और उस प्रतीति के बल से उनके भी अल्पकाल में अपनी परिपूर्ण शक्ति विकसित हो जायेगी।

—इसप्रकार सिद्ध भगवान जैसे अपने आत्मा के लक्षपूर्वक जो नमस्कार करे, उसी ने सिद्ध भगवान को सच्चा नमस्कार किया है।

कृतकृत्यपना

पुनश्च, सिद्ध भगवान कैसे हैं?—तो कहते हैं कि कृतकृत्य हो गये हैं; इसलिये अब अनन्तकाल तक इसी प्रकार रहेंगे। जो—जो करने योग्य कार्य था, वह करके भगवान पूर्ण आनन्दमय कृतकृत्यदशा को प्राप्त हो गये हैं; अब कुछ नवीन कार्य करने की आकुलता उन्हें नहीं रही। भक्तजनों के अनुग्रह के लिये अथवा दुष्टजनों के निग्रह के लिये वे पुनः अवतार धारण नहीं करते; वे तो सदैव मुक्त ही रहते हैं। अपनी भक्ति करनेवाले को शुभफल और निन्दा करनेवाले को अशुभफल कहीं भगवान नहीं देते; किन्तु वे-वे जीव अपने-अपने परिणामों से ही स्वयं वैसा फल प्राप्त करते हैं; भगवान को किसी के प्रति राग या द्वेष नहीं है; भगवान तो वीतरागी कृतकृत्य हो गये

हैं; अब उन्हें कोई नवीन साधना शेष नहीं रही है, इसलिये पूर्ण ज्ञानानन्द के अनुभवमय कृतकृत्यदशा में वे सादि-अनन्तकाल तक बिराजमान रहते हैं; वहाँ परिणमन है किन्तु ज्यों की त्यों पर्याय बदलती रहती है। पर्याय भले ही ''ज्यों की त्यों'' हो, किन्तु ''वह की वही'' पर्याय नहीं होती—प्रतिसमय नई-नई पर्याय होती रहती है।

सिद्ध भगवान को देखने की रीति

प्रश्न : ऐसे सिद्ध भगवान हमें दिखाई नहीं देते, फिर हम कैसे मानें ?

उत्तर : भाई ! जिसने मति-श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा के शुद्धस्वरूप का निर्णय किया, उसे सिद्ध भगवान भी प्रतीति में आ गये हैं। आँख आदि इन्द्रियों से सिद्ध भगवान भले ही दिखाई न दें, किन्तु ज्ञान में उनका निर्णय हो सकता है। अज्ञानी कहते हैं कि हमें सिद्ध दिखाई नहीं देते; धर्मी कहते हैं कि हमारे हृदय में ही सिद्ध भगवान बिराजमान हैं। सिद्ध भगवान का आत्मा भले ही प्रत्यक्ष दिखाई न दे, किन्तु जिसने मति-श्रुतज्ञान को स्वसन्मुख करके स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध भगवान जैसे अपने शुद्ध स्वभाव को देखा, उसने सिद्ध भगवान को भी देखा है और अपने हृदय में उनकी स्थापना की है।

— इसप्रकार सिद्ध भगवन्तों की हृदय में स्थापना करके उन्हें हमारा नमस्कार हो !

— इसप्रकार अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप पहिचानकर उन्हें नमस्कार किया; अब आचार्य-उपाध्याय और साधु परमेष्ठी के स्वरूप का अवलोकन करते हैं।

❀ ❀ ❀

(३-४-५) श्री आचार्य उपाध्याय और साधु का स्वरूप

❀ आचार्य उपाध्याय या साधु—इन सर्व मुनियों की दशा कैसी होती है, उसका पहले सामान्यरूप से वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् आचार्यादि की विशेषता का वर्णन करेंगे। जो जैन मुनि हैं उन सब की दशा निम्नानुसार होती है :—

- जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह छोड़कर, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, अंतरंग में उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वयं अपना अनुभव करते हैं;
- परद्रव्य में अहंबुद्धि नहीं रखते;
- अपने ज्ञानादिक स्वभावों को ही अपना मानते हैं;
- परभावों में ममत्व नहीं करते;

– परद्रव्य तथा उनके स्वभाव ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं, उन्हें जानते तो अवश्य हैं, किन्तु इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें राग-द्वेष नहीं करते।

– शरीर की अनेक अवस्थाएँ होती हैं, बाह्य में अनेक प्रकार के निमित्त आते हैं, किन्तु वे मुनि वहाँ कुछ भी सुख-दुःख नहीं मानते।

– अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसी होती है, वैसी ही होती है, किन्तु उसे खींच-तानकर नहीं करते।

– वे अपने उपयोग को बहुत नहीं घुमाते, किन्तु उदासीन होकर निश्चल वृत्ति को धारण करते हैं।

– कदाचित् मन्दराग के उदय से शुभोपयोग भी होता है, जिसके द्वारा वे शुद्धोपयोग के बाह्य साधनों में अनुराग करते हैं।

– परन्तु उस रागभाव को भी हेय जानकर दूर करने की इच्छा करते हैं।

– तीव्र कषाय के उदय के अभाव से हिंसादि अशुभोपयोग परिणति का तो अस्तित्व ही उनके नहीं रहा है।

– सर्व मुनियों को ऐसी अंतरंग दशा होने से बाह्य दिगम्बर सौम्य मुद्राधारी हुए हैं।

– शरीर संस्कारादि विक्रिया से रहित हुए हैं।

❀ वन खण्डादि में वास करते हैं।

❀ अट्ठाईस मूलगुणों का जो अखण्डित पालन करते हैं।

❀ बाईस परिषहों को जो सहन करते हैं।

❀ बारह प्रकार के तप को जो आदरते हैं।

❀ कदाचित् ध्यानमुद्राधारी प्रतिभावत् निश्चल होते हैं।

❀ कदाचित् अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रिया में प्रवर्तन करते हैं।

❀ कभी मुनिधर्म को सहकारी शरीर की स्थिति के हेतु से योग्य आहार-विहारादि क्रिया में सावधान होते हैं।

—इसप्रकार जो जैन मुनि हैं, उन सबकी ऐसी ही अवस्था होती है।

मुनिधर्म का मूल-सम्यग्दर्शन

आत्मा के ज्ञानपूर्वक वैराग्य होने से, समस्त परिग्रह छोड़कर अंतर में शुद्धोपयोग द्वारा तीन

कषायों का अभाव होने पर मुनिदशा प्रगट होती है। कैसा है मुनिधर्म ? कहते हैं शुद्धोपयोगरूप है। उस धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है; यानी मुनि होनेवाले को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो पहले हो चुके हैं; इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक ही यह मुनिदशा की बात है—ऐसा समझना। सम्यग्दर्शन के बिना तो चौथा या पाँचवाँ गुणस्थान भी नहीं होता, तब फिर मुनिदशा का छट्ठा-सातवाँ गुणस्थान तो होगा ही कहाँ से ?

पहले मुनि होकर व्यवहारचारित्र का पालन करो, और फिर भगवान के निकट जाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे,—ऐसा जो मानते हैं, उन्हें तो मुनिदशा की भी खबर नहीं है और न सम्यग्दर्शन की खबर है।

शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा

सम्यग्दर्शनपूर्वक वैराग्य होने से, वस्त्रादि समस्त परिग्रह छोड़कर अंतरस्वभाव के अवलम्बन से शुद्धोपयोगी चारित्र प्रगट हुआ, उसका नाम मुनिदशा है। जैनमुनि ऐसे होते हैं। वे मुनि शुद्धोपयोग द्वारा स्वयं अपना अनुभव करते हैं। शुद्धोपयोगरूप वीतरागी चारित्र ही सच्ची मुनिदशा है, इसके सिवा शुभराग में या शरीर की दिगम्बरदशा में वास्तव में मुनित्व नहीं है। मुनियों के पंच-महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि होते हैं; वह शुभोपयोग हो भले, किन्तु उस शुभोपयोग द्वारा कहीं मुनिदशा नहीं है। मुनि वास्तव में उस शुभोपयोग को नहीं आदरते, किन्तु अंतर में शुद्धोपयोग को ही आदरते हैं। केवलज्ञान की साधना शुद्धोपयोग द्वारा ही होती है। छट्ठे गुणस्थान में भी तीन कषायों के अभावरूप जो निर्विकारी चारित्र है, वही मुनिपना है; वहाँ राग है, वह कहीं मुनिपना नहीं है; मुनि उस राग में या शरीर की क्रिया में ममत्व नहीं रखते।

परद्रव्य या परभाव में ममत्व का अभाव

अपने जो ज्ञानादि स्वभाव हैं, उन्हीं को अपना मानते हैं; इसके सिवा किसी भी परद्रव्य में अहंबुद्धि नहीं करते, और न रागादि परभावों में ममत्व करते हैं। यद्यपि चौथे गुणस्थानवाला सम्यक्त्वी भी अपने ज्ञानादि स्वभाव को ही अपना स्वरूप मानता है और परद्रव्य या परभाव में ममत्व नहीं रखता; किन्तु यहाँ मुनिदशा के योग्य वीतरागी शुद्धोपयोगसहित की बात है।

पर को इष्ट-अनिष्ट नहीं मानते और न राग-द्वेष करते हैं

परद्रव्य में अहंबुद्धि न होने पर भी, परद्रव्य तथा उसके स्वभाव ज्ञान में स्वयं प्रतिभासित होते हैं; उसे मुनि जानते अवश्य हैं, किन्तु उसे इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष नहीं करते। सम्यक्त्वी

को भी पर में इष्ट-अनिष्टपने की बुद्धि तो नहीं है, किन्तु अभी राग-द्वेष होता है और मुनिदशा में तो महान वीतरागता प्रगट हो गई है। मुनि परवस्तु को जानते ही नहीं - ऐसा नहीं है। आकुलतापूर्वक पर को जानने नहीं जाते, किन्तु परद्रव्य सहज ही ज्ञान में ज्ञात होता है, उसे जानते अवश्य हैं, परन्तु उसमें कहीं भी ममत्व नहीं करते, और न कहीं इष्ट-अनिष्टपना मानकर राग-द्वेष करते हैं।

पर से सुख-दुःख नहीं मानते और न हर्ष-शोक करते हैं

पुनश्च, शरीर की अनेक अवस्थाएँ होती हैं; रोगादि होते हैं, और बाह्य में अनेक प्रकार के निमित्त आते हैं, किन्तु उनमें किंचित् सुख-दुःख नहीं मानते। पर में इष्ट-अनिष्टपना मानकर राग-द्वेष नहीं करते और न सुख-दुःख मानते हैं—ऐसी मुनि की दशा होती है। इन्द्र आकर पूजा करें या सिंह-चीते आकर शरीर को फाड़ खायें, उसमें मुनि सुख-दुःख नहीं मानते। सम्यक्त्वी भी पर से सुख-दुःख नहीं मानते, किन्तु मुनि को तो तदुपरान्त स्वरूप की स्थिरता से महान वीतरागता हो गई है; इसलिये हर्ष-शोक नहीं होते।

बाह्यक्रिया खींच-तानकर नहीं करते

अपनी मुनिदशा के योग्य बाह्यक्रिया जैसी होती है, वैसी होती है, किन्तु उसे खींच-तानकर नहीं करते। उदासीनरूप से सहज ही बाह्यक्रिया होती है। इतने समय में मुझे अमुक स्थान तक विहार करना ही पड़ेगा, अमुक प्रसंग पर मुझे बोलना ही पड़ेगा—ऐसा बाह्यक्रिया का हठाग्रह मुनि के नहीं होता। यहाँ 'मुनिदशा के योग्य' हो—ऐसी बाह्यक्रिया की बात है; जो मुनिदशा में योग्य न हो—ऐसी क्रिया मुनि के नहीं होती—ऐसा ही मेल है।

उपयोग को बहुत नहीं भटकाते

मुनि अपने उपयोग को बहुत भटकाते नहीं हैं, किन्तु उदासीन होकर निश्चलवृत्ति को धारण करते हैं। तीन कषायों का नाश होने से महान वीतरागी स्थिरता प्रगट हुई है; इसलिये उपयोग को बहुत नहीं भटकाते। बाहर की यह बात जान लूँ और वह बात जान लूँ; इतनी पुस्तकें पढ़ लूँ—इसप्रकार जहाँ-तहाँ उपयोग को नहीं ले जाते। यद्यपि अभी स्वरूप में उपयोग पूर्णतया स्थिर नहीं हुआ है, इसलिये बाह्य में भी जाता है, किन्तु उसे अधिक नहीं घुमाते; मुख्यतया तो शुद्धोपयोग की ही साधना करते हैं। मुनियों के शुद्धोपयोग की प्रधानता है और शुभोपयोग गौण है।

कदाचित् शुभोपयोग होता है, उसे उपादेय नहीं मानते

कदाचित् मंदराग के उदय से शुभोपयोग भी होता है; संज्वलन कषाय की कर्मप्रकृति के

तीव्र उदय से शुभोपयोग होता है – ऐसा नहीं कहा। संज्वलन के तीव्र उदय से छट्ठा गुणस्थान होता है—ऐसा गोम्मटसार में कहा है, वह निमित्त का कथन है; वास्तव में जीव को स्वयं वैसे राग का उदय होने पर छट्ठा गुणस्थान होता है। मुनियों को बारम्बार निर्विकल्पदशा आती ही रहती है; इसलिये शुद्धोपयोग का प्रयत्न वर्तता ही रहता है। पंचमहाव्रतादि का विकल्प सदैव बना ही रहे—ऐसा नहीं होता। इसलिये कहा है कि कदाचित् मंदराग के उदय से शुभोपयोग भी 'भी' होता है; 'भी' कहकर शुभोपयोग की गौणता बतलाई है; मुख्य उद्यम तो शुद्धोपयोग का ही है। शुभोपयोग के समय मुनि, शुद्धोपयोग के बाह्य साधनों में—स्वाध्याय, महाव्रतादि में अनुराग करते हैं; उस रागभाव को भी हेय जानकर दूर करने की इच्छा रखते हैं। देखो, यहाँ शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का बाह्य साधन तो कहा है, किन्तु उसे हेय कहा है; अर्थात् शुभ को हेय करके अंतरस्वभाव के अवलम्बन से शुद्धोपयोग प्रगट करे तो उस शुभ को बाह्य साधन कहा जाता है। शुद्धोपयोग का सच्चा साधन तो अंतरस्वभाव का अवलम्बन ही है। यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि मुनि को छट्ठे गुणस्थान में शुभोपयोग होता है, किन्तु उसके आधार से मुनिपना स्थित नहीं है; मुनिपना तो उससमय भी अन्तरस्वभाव के अवलम्बन से होनेवाली वीतरागी स्थिरता से ही अवस्थित है। मुनिपना, संवर-निर्जरारूप है और शुभोपयोग, आस्रव है। मुनि उस शुभराग को हेय जानते हैं। जो शुभराग को उपादेय माने, उसके सच्चा मुनित्व नहीं होता।

अशुभपरिणति तो होती ही नहीं

जीव की परिणति के तीन प्रकार हैं—शुद्धपरिणति, शुभपरिणति और अशुभपरिणति। उनमें से मुनि के छठवें गुणस्थान में मुख्यतया शुभपरिणति और गौणरूप से अति मंदरस से अशुभपरिणति होती है—यह पहले कह चुके हैं।* अब कहते हैं कि—अशुभपरिणति तो मुनि के होती ही नहीं। मुनियों के तीव्र कषाय के उदय का तो अभाव है; इसलिये हिंसादि अशुभोपयोग की परिणति का तो उनके अस्तित्व ही नहीं रहा है। यद्यपि सूक्ष्म करणानुयोग की अपेक्षा से तो शास्त्र में छट्ठे गुणस्थान में भी आर्त्तध्यान में अशुभपरिणामों का होना कहा है। किसी मुनि के कभी वैसे सूक्ष्म अशुभपरिणाम हो जाते हैं, किन्तु यहाँ सामान्यरूप से बात की है; सामान्यरूप से तो मुनियों को अशुभपरिणति होती ही नहीं। मुख्यरूप से मिथ्यादृष्टि को ही अशुभपरिणति मानी गई है।

* गुजराती आत्मधर्म (अंक १३६, पृष्ठ-११९) में इस प्रकार है :—'उसमें मुनि को मुख्यरूप से शुद्धपरिणति तथा गौणरूप से शुभपरिणति होती है।

सम्यक्त्वी गृहस्थ के शुभपरिणति की प्रधानता होती है और शुद्धपरिणति गौणरूप से होती है। मुनियों के शुद्धपरिणति मुख्य होती है और शुभपरिणति गौणरूप से होती है; अशुद्धपरिणति तो उनके मानी ही नहीं गई है।

अन्तरंगदशापूर्वक की बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्रा

इसप्रकार मुनि की अन्तरंगदशा का स्वरूप कहा। वैसी अन्तरंगदशापूर्वक बाह्य में कैसी दशा होती है-वह अब बतलाते हैं। उपरोक्त अन्तरंगदशा होने पर बाह्य में मुनि दिगम्बर सौम्यमुद्राधारी होते हैं। मुनि की बाह्य मुद्रा भी उपशांत... स्थिर... सौम्य होती है। शरीर के समस्त अंग, विकाररहित उपशांत हो गये हैं। मुनि को शरीर पर वस्त्रादि नहीं होते और शरीर संस्कारादि विक्रिया भी उनके नहीं होती। देखो, यह अन्तरंगदशासहित की बात है।

अंतर में तीन कषायों का नाश होकर शुद्धोपयोगरूप वीतरागी मुनि दशा प्रगट हो, वहाँ बाह्य में शरीर की दिगम्बर सौम्यमुद्रा न हो—ऐसा नहीं हो सकता।

किन्तु अन्तरंग में शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा प्रगट हुए बिना, मात्र बाह्य में दिगम्बर हो तो उसे मुनिदशा नहीं कहा जाता। इसलिये अन्तरंग और बाह्यदशा का जैसा मेल है, वैसा जानना चाहिये।

मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी तो संसारतत्त्व ही है

जैन मुनियों के तो अंतर की शुद्धोपयोगदशापूर्वक बाह्य में दिगम्बर द्रव्यलिंग होता है। अंतरदशा के जाने बिना अकेले बाह्य के द्रव्यलिंग से ही जो अपने को मुनित्व मानता है, वह तो संसारतत्त्व ही है। मिथ्यादृष्टि जीव, द्रव्यलिंगी हो जाये, तथापि उसने संसार किंचित् भी नहीं छोड़ा है क्योंकि वह उदयभाव में ही अवस्थित है; इसलिये संसार में ही पड़ा है; और सम्यक्त्वी धर्मात्मा गृहस्थपने में हो, तथापि उसे सम्यग्दर्शनादि रूप जो उपशम, क्षयोपशम या क्षायिकभाव प्रगट हुआ है, उतना संसार छूट गया है। मिथ्यात्वादि छूटने पर अनन्त संसार तो उसके छूट गया है; इसलिये मिथ्यादृष्टि मुनि की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को श्रेष्ठ कहा है। मिथ्यादृष्टि मुनि तो संसारमार्गी है, और सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मोक्षमार्गी है। यहाँ तो सच्चे भावलिंगी मुनियों की बात है। जहाँ अन्तरंगदशापूर्वक बाह्य दिगम्बरदशा न हो, वहाँ मुनित्व नहीं होता। अन्तरंग में मुनिदशा की शुद्धता प्रगट हुई हो और गृहवास में रहते हों—ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मुनि तो जंगल में वास करते हैं।

२८ मूलगुणों का पालन

पुनश्च, मुनि २८ मूलगुणों का अखण्ड पालन करते हैं। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच

इन्द्रियनिरोध, छह आवश्यक, केशलोंच, स्नानरहितता, नग्नता, अदंत धोवन, भूमिशयन, स्थिति भोजन और एकबार आहारग्रहण—इस प्रकार २८ मूलगुण हैं; उनमें मुनि विपरीतता नहीं आने देते। जहाँ नग्नता के बदले सवस्त्रता हो, स्थितिभोजन अर्थात् खड़े-खड़े हाथ में आहार लेने के बदले बैठे-बैठे या बर्तनादि में आहार हो, तथा दिन में एक ही बार आहार के बदले अनेकबार आहार हो;—इत्यादि प्रकार से मूलगुणों में भंग हो, वहाँ मुनिदशा नहीं होती; तथापि उसमें जो मुनिदशा माने, उसे मुनि की पहिचान नहीं है; इसलिये गुरुपद की उसे खबर नहीं है। यहाँ तो अन्तर की शुद्धोपयोगदशासहित २८ मूलगुणों की बात है। अन्तरंगदशा बिना मात्र शुभराग से २८ मूलगुणों का पालन करे तो वह द्रव्यलिंग है, किन्तु उसके वास्तव में मुनिदशा नहीं है, और २८ मूलगुणों में भी जिसके विपरीतता हो, उसके तो (भले ही शरीर की दिगम्बरदशा हो, तथापि) द्रव्यलिंग भी सच्चा नहीं है।

बाईस परीषह

और मुनि बाईस परीषह सहन करते हैं। मार्ग से अच्युतपने के लिये तथा निर्जरा के हेतु परीषह सहन करना कहा है, यानी जिसके अन्तर में सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मार्ग प्रगट हुआ हो, उसके उस मार्ग से अच्युतिरूप परीषह होता है। किन्तु जिसके अभी मार्ग ही प्रगट नहीं हुआ, ऐसे मिथ्यादृष्टि के परीषह नहीं होता। परीषह कहीं दुःख नहीं है। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि के दुःख सहन करने को अज्ञानी लोक परीषह कहते हैं, किन्तु वह बात सत्य नहीं है। जिसमें दुःख मालूम हो या अन्तरंग में राग-द्वेष हो, वह परीषह नहीं है। जिसमें दुःख का अनुभव हो, वह तो अशुभ पापभाव है। अथवा, राग-द्वेष की उत्पत्ति हो, फिर उसको जीतना, वह परीषहजय है—ऐसा कोई कहे तो वह भी सत्य नहीं है। 'मार्ग से अच्युतपना' अर्थात् वीतरागभावरूप मार्ग से च्युत होकर राग-द्वेष की उत्पत्ति का ही न होना, वह परीषह है। किन्तु राग-द्वेष हो, उतना तो मार्ग से च्युतपना है, वह परीषह नहीं है। मुनि को अन्तर में स्वरूप-स्थिरता द्वारा मार्ग प्रगट हुआ है और चाहे जैसे अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग आयें तो भी वे राग-द्वेष नहीं करते और मार्ग से च्युत नहीं होते; उनके परीषह है और वह निर्जरा का कारण है।

बारम्बार सातवें गुणस्थान की निर्विकल्पदशा

पुनश्च, मुनि बारह प्रकार के तप भी आदरते हैं। कभी-कभी ध्यानमुद्रा धारण करके प्रतिमावत् निश्चल होते हैं। मुनियों को छट्ठे गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक होता ही नहीं;

बारम्बार सातवें गुणस्थान की निर्विकल्पदशा तो होती ही रहती है, और तदुपरान्त निर्विकल्पध्यान में विशेष एकाग्रता का प्रयत्न करते हैं। घंटों तक निद्रा में पड़े रहें, वहाँ तो विशेष प्रमाद है; ऐसा प्रमाद हो, वहाँ मुनिदशा नहीं होती। मुनि के स्वरूप की जागृति खूब होती है; इसलिये बारम्बार निर्विकल्प अप्रमत्तदशा आती ही रहती है; एकसाथ अन्तर्मुहूर्त से अधिक निद्रा मुनि के नहीं होती। मुनि ध्यान में एकाग्रता द्वारा अन्तर में लीन रहने का बारम्बार प्रयत्न करते रहते हैं। कभी अध्ययनादि बाह्यक्रिया में वर्तते हैं, और कभी मुनिधर्म को सहकारी शरीर की स्थिति के हेतु आहार-विहारादि क्रियाओं में सावधान होते हैं।

सर्व जैनमुनियों की दशा

इसप्रकार शुद्धोपयोग से लेकर आहारादि का वर्णन करके मुनि की अंतर और बाह्यदशा कैसी होती है, वह बतलाया। उसमें सच्चा तो अंतर में जो शुद्धोपयोगी वीतरागी चारित्र हैं, वही मुनित्व है; उसके साथ शुभराग कैसा होता है और बाह्य निमित्त कैसे होते हैं - वह बतलाया। जो जैन मुनि हैं, उन सबकी उपरोक्तानुसार ही अंतर तथा बाह्यदशा होती है; उससे विपरीत हो तो वह जैन मुनि नहीं है; जैन के सिवा अन्य में तो कभी सच्ची मुनिदशा होती ही नहीं। ऊपर मुनिदशा का जैसा अन्तरंग और बहिरंगस्वरूप बतलाया, वैसी ही अवस्था सर्व जैन मुनियों की होती है—उसमें कोई अपवाद नहीं है। जो भी जैनमुनि हों या आचार्य हों, उपाध्याय हों, या साधु हों, चौथे काल में हों या पंचमकाल के, महाविदेह के हों या भरतक्षेत्र के, जिनकल्पी हों या स्थिवरकल्पी,—उन सब जैनमुनियों की दशा उपरोक्त कहे अनुसार ही होती है; उसमें यदि विपरीतता हो तो वह जैनमुनि नहीं है—ऐसा समझना। 'णमो लोए सव्व साहूणं'—ऐसा कहा, उसमें ऐसी दशावाले सर्व साधुओं का समावेश हो जाता है; जो इससे विपरीत हों, उन किन्हीं का समावेश इसमें नहीं होता।

धन्य वह मुनिदशा!

अहो! मुनिदशा तो अलौकिक पद है, मुनि तो परमेष्ठी पद में सम्मिलित हो गये हैं।

आचार्य तथा उपाध्यायपरमेष्ठी में उपरोक्त मुनिदशा के अतिरिक्त अन्य क्या विशेषता होती है, वह अब कहते हैं :—

आचार्य परमेष्ठी

ऊपर समस्त जैन मुनियों का स्वरूप बतलाया है; उनमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अधिकता द्वारा प्रधानपद प्राप्त करके जो संघ के नायक हुए हैं, वे आचार्य हैं। वे आचार्य भी

मुख्यतया तो निर्विकल्प स्वयपाचरणचारित्र में ही निमग्न हैं। अन्तर में शुद्धोपयोगी वीतरागीचारित्र की मुख्यता रखकर ही यह बात है। आचार्य के भी निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करना ही मुख्य आचरण है; किन्तु कदाचित् अन्य धर्म के लोभी जिज्ञासु जीवों को देखकर, करुणाबुद्धि होने से उन्हें धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षा-ग्राहक जीवों को दीक्षा देते हैं। किसी को जबरन् दीक्षा नहीं देते, किन्तु जो जीव वैरागी होकर दीक्षा लेने आता है, उसकी पात्रता देखकर दीक्षा देते हैं; और जो जीव अपने दोष प्रगट करके प्रायश्चित लेने आता है, उसे प्रायश्चित देते हैं। इसप्रकार अन्तरंग निर्विकल्प आनन्द के आचरणपूर्वक ऐसी दीक्षा-शिक्षादि का आचरण करने-करानेवाले श्री आचार्य परमेष्ठी हैं, उन्हें हमारा नमस्कार हो!

❀ ❀ ❀

उपाध्याय परमेष्ठी

पुनश्च, उपरोक्तानुसार शुद्धोपयोगरूप मुनिदशा में जो मुनि अनेक जैनशास्त्रों का ज्ञाता होकर, संघ में पठन-पाठन के अधिकारी बने हों, वे उपाध्याय हैं। वे उपाध्याय समस्त शास्त्र के प्रयोजनभूत अर्थ को जानकर, एकाग्र होकर अपने स्वरूप का ध्यान करते हैं; इसलिये उपाध्याय के भी स्वरूपाध्ययन की मुख्यता है, किन्तु जब उपयोग स्वरूप में स्थिर नहीं होता, तब स्वयं आगम का अध्ययन करते हैं, तथा अन्य बुद्धिमान जीवों को पढ़ाते हैं।—इसप्रकार अपने अन्तरस्वरूप में एकाग्रता के अभ्यास की मुख्यतापूर्वक समीपवर्ती भव्यजीवों को अध्ययन करानेवाले श्री उपाध्याय परमेष्ठी हैं; उन्हें हमारा नमस्कार हो!

❀ ❀ ❀

साधुपरमेष्ठी

शुद्धोपयोगरूप चारित्र के धारक जैनमुनियों में ऊपर कहे हुए आचार्य या उपाध्याय पदवी धारण करनेवाले मुनियों के अतिरिक्त जो मुनि हैं, वे सब साधु हैं। वे साधु शुद्धोपयोग साधन द्वारा अपने आत्मस्वभाव की साधना करते हैं। परवस्तु में इष्ट-अनिष्टपना मानकर, वहाँ अपना उपयोग न अटके, तथा शुद्धोपयोगरूप जो दशा प्रगट हुई है, उसमें भंग न पड़े—इसप्रकार अंतर में एकाग्रता द्वारा उपयोग को साधते हैं तथा उसके बाह्य साधनभूत तपश्चरणादि क्रिया में प्रवर्तन करते हैं;—ऐसा भाव उस भूमिका में छट्ठे गुणस्थान में होता है, किन्तु वहाँ मुख्यता तो शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूपसाधना की ही है।—ऐसे स्वरूप के साधक श्री साधुपरमेष्ठी को हमारा नमस्कार हो!

—इसप्रकार पंच परमेष्ठी भगवन्तों को पहिचानकर उन्हें नमस्कार किया। अब, उन पंच परमेष्ठी की महानता काहे से है, वह बतलाते हैं।

❀ ❀ ❀

❀ वीतराग विज्ञान द्वारा ही पंचपरमेष्ठी पूज्य हैं

– पूर्वोक्तानुसार इन अरिहंतादिक पंचपरमेष्ठी का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है; और उसके द्वारा ही अरिहंतादिक स्तुतियोग्य महान हुए हैं।

– जीवतत्त्व से तो सर्व जीव समान हैं; किन्तु रागादि विकार और ज्ञान की हीनता द्वारा जीव निन्दा योग्य होते हैं; तथा रागादि की हीनता और ज्ञान की विशेषता द्वारा स्तुतियोग्य होते हैं।

– अब, पंचपरमेष्ठी में अरिहंत और सिद्धभगवान के तो सम्पूर्ण रागादि की हीनता और ज्ञान की विशेषता होने से सम्पूर्ण वीतराग-विज्ञानभाव हुआ है; तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु के एकदेश रागादि की हीनता और ज्ञान की विशेषता होने से एकदेश वीतराग-विज्ञानभाव हुआ है। इसलिये उस वीतराग-विज्ञान भाव द्वारा ही अरहंतादि पंचपरमेष्ठी को स्तुतियोग्य महान जानना चाहिये।

❀ ❀ ❀

पंचपरमेष्ठी को जानने से भेदविज्ञान होता है

प्रारम्भ में मंगलाचरण में कहा था कि —

मंगलमय मंगलकरन वीतराग-विज्ञान,
नमूँ ताहि जाते भये अरहंतादि महान।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—इन पंचपरमेष्ठी का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है, और उस वीतराग-विज्ञान द्वारा ही उनकी महानता है। जो जीव, पंचपरमेष्ठी को ऐसे वीतराग-विज्ञान स्वरूप से पहिचानकर पूज्य मानता है, वह रागादि को अपना स्वरूप नहीं मानता-शुभराग से भी लाभ नहीं मानता, किन्तु अपने स्वरूप को राग से भिन्न जानकर भेदज्ञान करता है। जो जीव, राग से लाभ मानता है, उसने राग को महानता दी है; इसलिये वीतरागी-विज्ञान द्वारा ही महान है-ऐसे पंचपरमेष्ठी को उसने यथार्थतया नहीं जाना है।

मुनि भी वीतराग-विज्ञान स्वरूप ही है

पंचपरमेष्ठी कैसे हैं ?—रागमय नहीं हैं, किन्तु वीतराग-विज्ञानमय हैं, और उसी से वे पूज्य

हैं। मुनि आदि को किंचित् राग होता है, किन्तु उस राग द्वारा वे पूज्य नहीं हैं; पूज्य तो वीतरागी-विज्ञान से ही हैं। जो पंच महाव्रतादि का राग है, वह कहीं मुनि का स्वरूप नहीं है; मुनि का स्वरूप तो वीतरागी-विज्ञानमय है। राग तो आस्रव है और मुनिदशा, संवर-निर्जरारूप है।

जीव का निंद्यपना और पूज्यपना काहे से है ?

जीवतत्त्वरूप से तो सब जीव समान ही हैं; सिद्ध और अज्ञानी भी जीवतत्त्वरूप से तो समान ही हैं; किन्तु पर्याय में अज्ञान और राग-द्वेष द्वारा जीव का निंद्यपना होता है। वीतरागी-विज्ञान द्वारा पूज्यपना है, और उससे विरुद्ध ऐसे अज्ञान तथा राग-द्वेष द्वारा निंद्यपना है। आत्मा के शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप की दृष्टि द्वारा अनादिकालीन अज्ञान का नाश करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागी-विज्ञान प्रगट किया है, उसके द्वारा ही पंचपरमेष्ठी भगवान पूज्य और महान हैं। इसप्रकार आत्मा के गुणों द्वारा ही उनका पूज्यपना है, बाह्य संयोगों द्वारा या पुण्य द्वारा वास्तव में आत्मा का पूज्यपना नहीं है।

ज्ञान की हीनता और विशेषता का क्या अर्थ ?

ज्ञान की हीनता द्वारा जीव निंदायोग्य होता है—ऐसा कहा; उसमें ज्ञान की 'हीनता' कहने से विपरीतता समझना चाहिये। किन्हीं मुनिराज के बाह्य ज्ञातृत्व का विकास अल्प हो, तथापि वे कहीं निंद्य नहीं हैं। 'राग और विकार ही मैं हूँ, उससे मुझे लाभ होगा'—ऐसी मिथ्याबुद्धि के कारण जीव निंद्य होता है।

पुनश्च, ज्ञान की विशेषता द्वारा जीव स्तुतियोग्य होता है—ऐसा कहा; उसमें भी ज्ञान की विशेषता कहने से सम्यग्ज्ञान समझना चाहिये। किसी मिथ्यादृष्टि को ग्यारह अंग का ज्ञान हो, तथापि उसमें उसे विपरीतता होने से उसके ज्ञान की हीनता ही है; और मुनिदशा में किसी के शास्त्रज्ञान का विकास कम हो, तथापि वहाँ सम्यग्ज्ञान होने से ज्ञान की हीनता नहीं है, किन्तु विशेषता ही है। उनके अन्तर में ज्ञान का स्वसंवेदन बल बहुत बढ़ गया है।

रागादि की हीनता किसके होती है ?

ज्ञान की हीनता द्वारा निंद्यपना तथा विशेषता द्वारा पूज्यपना कहा है; उसमें हीनता और विशेषता का अर्थ ऊपर समझाया है। अब, रागादि की अधिकता द्वारा निंद्यपना और हीनता द्वारा पूज्यपना कहा, उसमें हीनता का अर्थ क्या है ? वह कहा जाता है। रागादि की हीनता अर्थात् नाश सम्यक्दर्शनपूर्वक ही हो सकता है। मिथ्यादृष्टि को रागादि की मंदता भले हो, किन्तु उसके रागादि

की हीनता नहीं होती। जिसे रागादि रहित आत्मा के शुद्धस्वभाव की पहिचान न हो, उसे रागादि की यथार्थ हीनता हो ही नहीं सकती; क्योंकि वह किसके अवलम्बन से राग की हीनता करेगा? जिसे राग से भिन्न स्वरूप की खबर नहीं है और राग के साथ ही एकता मानता है, उसे राग के अवलम्बन द्वारा अधिक से अधिक राग की वर्तमान जितनी मंदता होगी, किन्तु हीनता अर्थात् नाश नहीं होगा। रागरहित ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से ही राग की हीनता और ज्ञानादि की विशेषता होती है।

मिथ्यादृष्टि जीव, राग-द्वेष की मन्दता करके भले ही नववें ग्रैवेयक तक जाये, तथापि वह निंद्य है; रागादि की हीनता उसके किंचित् भी नहीं है, क्योंकि राग के साथ ही एकत्वबुद्धि है; इसलिये अनन्तानुबंधी आदि समस्त कषायें उसके वर्तती ही है। जो राग को अपना स्वरूप माने अथवा उससे लाभ माने, वह उसकी हीनता क्यों करेगा? इसलिये अज्ञानी को राग की हीनता यथार्थरूप से होती ही नहीं।

पंचपरमेष्ठी की वीतराग-विज्ञानता

आत्मा, रागरहित ज्ञानस्वरूप है; उसके भानपूर्वक रागादिक की हीनता तथा ज्ञान की अधिकता—ऐसे वीतराग-विज्ञान द्वारा जीव की महानता और पूज्यता है। पंचपरमेष्ठी में अरिहंत और सिद्ध भगवान के तो रागादिक का सम्पूर्ण अभाव हुआ है और परिपूर्ण ज्ञान विकसित हो गया है; इसप्रकार उनके सम्पूर्ण वीतराग-विज्ञान है।

आचार्य-उपाध्याय और साधु को सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक शुद्धोपयोगी चारित्र से रागादिक की अधिकांश हीनता हो गई है तथा ज्ञान की अधिकांश विशेषता हो गई है; किन्तु वहाँ अभी राग का अल्पांश रहा हे और केवलज्ञान नहीं हुआ है; इसलिये वहाँ एकदेश वीतराग-विज्ञान है। पूर्ण नहीं है, उस अपेक्षा से एकदेश कहा है।—इसप्रकार वीतराग-विज्ञान से पंचपरमेष्ठी भगवान पूज्य हैं।

चौथे गुणस्थान में भी वीतराग-विज्ञान

यद्यपि चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दृष्टि को अंशतः वीतराग-विज्ञान तो है; ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा के भान से वहाँ सम्यग्ज्ञान हुआ है और अनन्तानुबन्धी राग-द्वेष दूर हो गये हैं;—इसप्रकार चौथे गुणस्थान में भी वीतराग-विज्ञान का अंश है; किन्तु वहाँ परमेष्ठीपद नहीं है; इसलिये यहाँ पंचपरमेष्ठी में उसकी बात नहीं की।

परमेष्ठी पद

जो परम इष्टपद में स्थिर हैं, वे परमेष्ठी हैं। आत्मा का जो शुद्धचैतन्यस्वभाव है, वह उत्कृष्ट

इष्ट है और उसमें जो स्थित हैं, वे परमेष्ठी हैं। अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु—यह पाँचों परम चैतन्यपद में स्थित होने से परमेष्ठी हैं। अंतर में शुद्धोपयोग के साधन द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चयरत्नत्रय प्रगट करके, जिन्होंने तीन कषायों का नाश किया है और स्वरूप में विशेष स्थिरता प्राप्त की है—ऐसे मोक्षमार्गी मुनिवर परमेष्ठीपद में सम्मिलित हो गये हैं। सर्व मुनियों की तीनों काल बाह्य-अभ्यन्तर निर्ग्रंथदशा होती है। इसके शरीर मात्र परिग्रह है, शरीर पर कपड़े की एक लँगोटी भी नहीं रखते और जिसे शरीर पर लँगोटी रखी हो तो उसके तीन कषायों का अभाव नहीं हुआ है और न स्वरूपस्थिरता हुई है; वहाँ सम्यग्दर्शनसहित उत्कृष्ट पंचम गुणस्थान का श्रावकत्व हो सकता है, परन्तु मुनिदशा नहीं हो सकती। पंचपरमेष्ठी में उनकी गणना नहीं होती।

पंचपरमेष्ठी का स्वरूप पहिचाने तो प्रयोजन की सिद्धि हो

अहो! पंचपरमेष्ठीपद क्या है, उसकी महिमा की लोगों को खबर नहीं है। अनेक लोग प्रतिदिन 'णमोकार मंत्र' पढ़ते हैं, किन्तु उस णमोकार मंत्र में जिन पंचपरमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है, उनका स्वरूप तो जानते नहीं हैं। जिन्हें स्वयं नमस्कार करते हैं, उनका स्वरूप जाने बिना प्रयोजन की सिद्धि कहाँ से होगी? मैं किसे नमस्कार करता हूँ—वह सब जाने तो प्रयोजन की सिद्धि हो।

प्रथम तो जीव का प्रयोजन सुख का है; और वह सुख वीतराग-विज्ञान से होता है, इसलिये वीतराग-विज्ञान, वह प्रयोजन हुआ। अरिहंतादि पंचपरमेष्ठी भगवन्त वीतराग-विज्ञानस्वरूप हैं; वीतराग-विज्ञान द्वारा उनमें महानता होने से वे पूज्य और वंदनीय हैं।—इसप्रकार यदि वीतराग-विज्ञानस्वरूप पंचपरमेष्ठी भगवन्तों को पहिचाने तो अपने में भी स्वभाव और परभाव का भेदज्ञान होकर वीतराग-विज्ञानरूप प्रयोजन की सिद्धि हो।

[समाप्त]

मुद्रक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, वल्लभविद्यानगर
प्रकाशक : श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के लिये जमनादास माणेकचंद रवाणी